आदिवासी कविताओं में चित्रित आदिवासी समाज, संस्कृति और जीवन दर्शन

- अखिलेश कुमार मौर्य

शोध सार:

आदिवासी शब्द सुनते ही सबसे पहले विचार आता है कि यह ऐसा समुदाय होगा जो जंगल में रहने वाला असभ्य और बर्बर होगा। परन्तु सच तो यह है कि आदिवासी समाज अपने संस्कृति और जीवन दर्शन के प्रति बहुत सचेत रहा है। उनके संस्कृति और जीवन दर्शन भी बहुत सी बातें ऐसी हैं जिसे सीखा जा सकता है। तथाकथित सभ्य समाज ने आदिवासी समाज को हमेशा ही हेय दृष्टि से देखा है। यहाँ तक वह आदिवासी साहित्य को साहित्य मानने को तैयार नहीं है। विकास के नाम पर जंगल को काटा जा रहा है जिससे आदिवासी समुदाय विस्थापन के लिए मजबूर है। विकास के नाम पर सबसे ज्यादा आदिवासी समुदाय को ही छला गया है। इन्हें जल, जंगल और जमीन से बेखदल किया जा रहा है। इनकी समस्याओं में विस्थापन, गरीबी, शोषण, रोजगार और अशिक्षा प्रमुख है।

बीज शब्द: आदिवासी, समाज, संस्कृति, जीवन दर्शन, संघर्ष, पलायन, प्रकृति, परंपरा, विस्थापन

मूल आलेख:

भारत में आदिवासी समाज सदियों से निवास करता है। आदिवासी समाज की अपनी संस्कृति और साहित्य रहा है, परंतु हिंदी साहित्य में इसे उचित स्थान नहीं दिया गया। उसके पीछे यह तर्क दिया गया कि यह उच्च कोटि के साहित्य के अंतर्गत नहीं आता।आदिवासी साहित्य की व्याप्ति लोक साहित्य में काफी हद तक देखा जा सकता है। उनके संस्कृति और जीवन दर्शन को लोक साहित्य के माध्यम से समझा जा सकता है।

वर्तमान समय में कई रचनाकार अपनी मातृभाषा में रचनाएँ कर रहे हैं और उनको आदिवासी साहित्य में प्रसिद्धि मिल रही है। आदिवासी साहित्यकारों में प्रमुख नाम है- निर्मला पुतुल, ग्रेस कुजुर, वंदना टेटे, महादेव रोप्पो, अनुज लुगुन, जंसिता केरकेट्टा और हरिराम मीणा। ये साहित्यकार अपने रचनाओं के माध्यम से आदिवासी जीवन दर्शन, परम्पराएँ, संस्कृति और उनके उपर आये संकट को दुनिया से परिचित करा रहे हैं। हिंदी साहित्य में आदिवासी साहित्य की लोकप्रियता धीरे-धीरे बढ़ रही है। इन रचनाकारो की रचनाओं का हिंदी अनुवाद होने से भी आदिवासी साहित्य तक पाठकों की पहुँच बढ़ी है।

आदिवासी समाज तो पूरा कर्म के सिद्धांत पर ही आधारित है। वह रोज कुआँ खोदता है और रोज पानी पीता है। आदिवासी लेखिका रोज केरकेट्टा आदिवासी दर्शन को कुछ इस तरह अभिव्यक्त करती हैं-

> *"अब हम ये कहेंगे कि जीवन दर्शन और आजीविका का गहरा संबंध है। और आदिवासियों की आजीविका श्रम पर आधारित रही है। चाहे वो खेत में हैं, चाहे वो जंगल में हैं। लेकिन वो श्रम करके ही अपना जीवनयापन करते हैं। और कठिन श्रम पहाड़ में, जंगल में, नदियों में, घाटियों में उन्हें बहुत श्रम करना पड़ा है। इस बीच में जो भी बाधाएं आती रही हैं उन्हें कभी सुख से कभी दुख से व्यक्त किया है। ये जो मौखिक परंपरा का साहित्य हैं, सभी भाषाओं में वो संकलित होकर प्रकाशित हो रहा हैं। अब जरूरत हैं उनको ढूंढकर उनमें उनके जीवन दर्शन को खोजने की।"(1)*

आदिवासी समुदाय का पूरा जीवन प्रकृति के आस पास ही बीतता है। वह प्रकृति प्रेमी होते हैं। वह प्रकृति से उतना ही ग्रहण करते हैं जितना जरूरत होता है। वह पेड़ो की पूजा करते हैं। उनके कई पर्व और त्योहार प्रकृति को समर्पित हैं। अनुज लुगुन प्रकृति को कुछ इस तरह अपने कविता में व्यक्त करते हैं-

"खेतों के आसमान के साथ
हमने चाहा कि जंगल बचा रहे
अपने कुल-गोत्र के साथ
पृथ्वी को हम पृथ्वी की तरह ही देखें
पेड़ की जगह पेड़ ही देखें" (2)

आदिवासी समाज में नृत्य और गीत का बहुत महत्व है। आधुनिकता से दूर होने के कारण उनके पास टेलीविजन जैसे साधन ना होने के कारण वे अपने मनोरंजन के लिये लोकनृत्य करते हैं और लोकगीत गाते हैं। वे हर खुशी और दुःख के अवसर पर लोकगीत गाते हैं। आदिवासी समाज में स्त्री और पुरुष को बराबर का दर्जा प्राप्त है। वे बेटी के जन्म के अवसर पर भी गीत गाते हैं या और खुशियां मनाते हैं। पुत्री के जन्म पर एक संथाली गीत इस प्रकार है-

"ओहाय आपे गे आपे गे दाय दादा को
आपे गे आपे गे बोंगा बुरू को
ओहाय आये लागित नोवा ओड़ाक रे
कुड़ी गिदराय उपेल आकाना

ओहाय-आपे बाड़े नोवा धरती पुरी रे
हारा कोकू माय बुरू कोक् माय" (3)

इस गीत में आदिवासी समाज अपनी पुत्री के लिए अपने पुरखों से आशीर्वाद मांगते हैं। तथा वे उम्मीद करते हैं कि वे उनके वंश को आगे बढ़ायेंगे।

आदिवासी समाज को अक्सर पिछड़ा, जंगली और बर्बर कहा जाता है। तथाकथित सभ्य समाज उसे आधुनिक बनाने की वकालत करता है। आदिवासी कविताओं में उनकी संस्कृति, संघर्ष को बखूबी दिखाया है। कवि शशिभूषण मिस्र अपनी कविता 'हमें असभ्य रहने दो' में लिखते हैं-

"बाबा आदम के जमाने से
जब शायद तुम भी नहीं आये थे यहाँ
तब से इसी मिट्टी और इसी जंगल में
जीती आई है हमारी कई-कई पुश्तें" (4)

आदिकाल से ही आदिवासी समाज में स्त्री की महती भूमिका रही है, उसने समाज का नेतृत्व किया है। परंतु वैश्विकरण के दौर में स्त्री केवल भोग की वस्तु समझी जाने लगी हैं। निर्मला पुतुल ने अपनी कविता में स्त्री के दुःख को इस तरह व्यक्त किया है-

"सपनों में भागती
एक स्त्री का पीछा करते
कभी देखा है तुमने उसे
रिश्तो के कुरुक्षेत्र में
अपने...आपसे लड़ते ।
तन के भूगोल से परे
एक स्त्री के
मन की गाँठे खोलकर
कभी पढ़ा है तुमने
उसके भीतर का खौलता इतिहास" (5)

आदिवासी समाज प्रकृति पर पूरी तरह निर्भर है। उसके बिना उसके सुखी और संपन्न जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। औद्योगिकरण के दौर में प्रकृति का अंधाधुंध दोहन हो रहा है, पेड़ो को काटा जा रहा है। नदियों के उपर बाँध बनाये जा रहे हैं जिससे आदिवासी समाज वहाँ से विस्थापित

होने को मजबूर है। इस अनियंत्रित विकास से मानव के साथ पशु- पंक्षियों को भी नुकसान उठाना पड़ रहा है। कवयित्री ग्रेस कुजुर प्रकृति के दोहन को आगाह करते हुए लिखती हैं-

"... इसीलिए फिर कहती हूँ
न छेड़ो प्रकृति को
अन्यथा यह प्रकृति करेगी भयंकर बगावत
और तब न तो तुम होंगे न हम हम होंगे" (6)

वैश्विकरण और उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रभाव धीरे-धीरे आदिवासी समाज पर भी पडने लगा है, वह अपनी संस्कृति को छोड़कर पश्चिमी संस्कृति को अपनाने लगा है। हरिराम मीणा अपनी कविता में लिखते हैं-

"नंगा देखना चाहा था मैं तुम्हें
इसीलिए नहीं इसमें कला हैं
या कि मेरी काम कुंठा इनमें
तुम तो मुझे पैंट और टी-शर्ट में मिले
और चाकला तुम मैक्सी में
इन सभ्य वस्त्रों में
कैसे बताओगे अपने हालचाल" (7)

अपनी जमीनों से वंचित होने पर आदिवासी रोजगार के लिए शहरों में पलायन के लिए मजबूर है। अशिक्षा और जागरूकता के अभाव में शहरों में उनका शोषण किया जाता है। पेट की भूख शांत करने के लिए आदिवासी स्त्री देह बेचने को मजबूर है। ग्रेस कुजुर अपने समाज से आह्वान करती हैं-

"वे लूटने- लुटाने आए
हम गये परदेश
धरती उजड़ी जंगल उजड़े
रह गया क्या शेष?
झाड़ियाँ हो गई कमान, सब बिखे तीर
देखना बाकी है कलम को तीर होने दो" (8)

इस कविता के माध्यम से कवयित्री आदिवासी समाज से कलम से तीर बनाकर पूंजीपतियों के खिलाफ क्रांति करना चाहती हैं।

आदिवासी समाज बहुत मेहनती होता है। वह कर्म में विश्वास करता है। यहाँ की स्त्रियां भी बहुत मेहनती होती हैं। वह परिवार के पालन-पोषण करने के लिए दिनभर जंगलों में सुखी लकड़ियाँ बीनकर बाजार में बेचती हैं। जंगल से ही फल-फूल खाने के लिए इकट्ठा करती हैं। निर्मला पुतुल ने अपनी कविता के माध्यम से इस दृश्य को व्यक्त किया है-

"वह जो सर पे सूखी लकड़ियों का गट्ठर लादे
पहाड़ से उतर रही हैं
पहाड़ी स्त्री अभी-अभी जाएगी बाजार
बौर बेचकर सारी लकड़ियाँ
बुझाएगी घर-घर के पेट की आग" (9)

आद्योगिकरण ने प्रकृति को खोखला कर दिया है। ज्यादा लालच में मनुष्य ने प्रकृति का ज्यादा दोहन कर दिया है, जिसके कारण ग्लोबल वार्मिंग जैसी समस्याओं से हर वर्ष प्राकृतिक आपदाएँ आ रही हैं। धरती बंजर हो रही है, नदिया सूख रही हैं और बेमौसम बरसात से सृष्टि अस्त-व्यस्त हो गई है। आदिवासी हमेशा प्रकृति की गोद में रहता है, जिसके कारण उसका जीवन बहुत दुखदाई बनकर रह गया है। ग्रेस कुजुर अपनी कविता में लिखती हैं-

"मेरा जूड़ा बहुत सूना लगता है संगी
सरहूल के फूलों के बिना
और लगता है
कहीं अटक गया है किसी डाल पर
करमा का गीत
नहीं सुनाई पड़ता है अब
बारिश की बूंदों का वह
पत्तियों से झरता हुआ संगीत" (10)

आदिवासी कविताओं में शोषण के प्रति क्रांति करने का जिक्र दिखाई देता है। आदिवासी समाज में जब भी कोइ क्रांति की शुरूआत की जाती हैं तब नगाड़ा बजाया जाता हैं, नगाड़ा क्रांति का प्रतीक है। आदिवासी कवयित्री निर्मला जी पुतुल अपनी रचनाओं के जरिए आदिवासी समाज को जागृत करना चाहती हैं इसलिए वह अपनी कविता में कहती हैं-

"मैं चाहती हूँ
आँख रहते अन्य आदमी की

आँख बने मेरे शब्द उनकी जुबान बने जो जुबान रहते गूंगे बने देख रहें तमाश चाहती हूँ मैं
नगाड़े की तरह बजें
मेरे शब्द
और निकल पड़े लोग
अपने-अपने घरों से सड़को पर।" (11)

निष्कर्ष

आदिवासी समाज की संस्कृति और जीवन दर्शन से हमें बहुत कुछ सीखने को मिलता है, परंतु आज आदिवासी समुदाय अपने संकट के दौर से गुज़र रहा है। आदिवासी समाज का पूरा जीवन ही प्रकृति पर आश्रित है, परंतु आज प्रकृति के साथ जिस तरह मानव व्यवहार कर रहा है उससे पूरे आदिवासी समाज को खतरा पैदा हो गया है। आदिवासी समुदाय की प्रमुख समस्याओं में विस्थापन, पलायन, जंगलों की अनियंत्रित कटाई, गरीबी है। इस वजहों से इनकी संस्कृति और जीवन दर्शन धीरे-धीरे नष्ट हो रहा है। समय रहते इनकी संस्कृति और जीवन दर्शन को साझा प्रयास से बचाने की जरूरत है। आदिवासियों से बात करके उनकी समस्याओं का समय रहते निराकरण करने की जरूरत है। अगर ऐसा नहीं हुआ तो वह दिन दूर नहीं जब आदिवासियों की संस्कृति और जीवन दर्शन धीरे-धीरे खत्म हो जाएगा।

संदर्भ

1. वंदना टेटे, आदिवासी दर्शन और साहित्य, विकल्प प्रकाशन, 2016, पृ. 33
2. अनुज लुगुन, समकालीन कविता, हरिराम मीणा (सं.), अलख प्रकाशन, जयपुर, 2013, पृ. 16
3. गंगासहाय मीणा (सं.), आदिवासी साहित्य, पत्रिका, अंक 6, अप्रैल 2016, पृ. 26
4. पंडित बन्ने (सं.), हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श, अमन प्रकाशन, कानपुर, पृ. 41
5. निर्मला पुतुल, नगाड़े की तरह बजते शब्द, भारतीय ज्ञानपीठ, 2005, पृ. 28
6. पंडित बन्ने (सं.), हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श, अमन प्रकाशन, कानपुर, पृ. 37
7. हरिराम मीना, आदिवासी स्वर और नई शताब्दी, रमणिका गुप्ता (सं.), वाणी प्रकाशन, 2002, पृ. 29
8. ग्रेस कुजुर, एक और जनी शिकार, अनुज्ञा बुक्स, 2020, पृ. 10
9. निर्मला पुतुल, नगाड़े की तरह बजते शब्द, भारतीय ज्ञानपीठ, 2005, पृ. 36
10. ग्रेस कुजुर, एक और जनी शिकार, अनुज्ञा बुक्स, 2020, पृ. 107
11. निर्मला पुतुल, नगाड़े की तरह बजते शब्द, भारतीय ज्ञानपीठ, 2005, पृ. 93

अखिलेश कुमार मौर्य
शोधार्थी, हिंदी विभाग, एम. एम. एच. कॉलेज, गाजियाबाद
संपर्क - 7318497241, मेल akhileshutsav298@gmail.com